न्यायमूर्ति एच. एस. राय और ए. पी. चौधरी के समक्ष

श्याम लाल–प्रार्थी

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य–उत्तरदाता

आपराधिक मिस. 237-एम/1989

22 अगस्त, 1990

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का II) - धारा 216 और 482 - खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 - धारा 16 (ए), 16 (1) दूसरा परंतुक - वारंट मामले की प्रक्रिया के अनुसार अभियुक्तों का परीक्षण - धारा 15 (1) (सी) के तहत आरोप तय किए गए - राय है कि अभियुक्त अधिक सजा का हकदार है और मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज नहीं किए गए सीआरपीसी के अनुसार मुकदमा चलाया जाना चाहिए - मजिस्ट्रेट उसके बाद आवश्यक राय दर्ज करके दोष का इलाज करता है और प्री-चार्ज साक्ष्य के लिए मामला तय करता है - इसके बाद नए आरोप तय किए जाते हैं - प्रक्रिया की त्रुटि का सुधार स्वीकार्य है - एस के लिए दूसरा परंतुक। 16(क) मजिस्ट्रेट को यह प्राधिकृत करता है कि वह सारांश प्रक्रिया से वारंट प्रक्रिया में परिवर्तित हो जाए - इस तरह के परिवर्तन से मुकदमे में कोई बाधा नहीं आती है - प्रक्रियात्मक गलती को सुधारने के माध्यम से केवल आरोप तय करके स्वत: आरोपमुक्त या बरी नहीं किया जा सकता है - अभियुक्त को किसी विशेष प्रक्रिया द्वारा मुकदमा चलाने का कोई निहित अधिकार नहीं है।

अभिनिर्धारित किया कि, यह स्वयंसिद्ध है कि वारंट मामले की सुनवाई की प्रक्रिया की तुलना में सारांश प्रक्रिया अभियुक्त के लिए कम अनुकूल है। यही कारण है कि संहिता की धारा 260 के विभिन्न खंडों में निर्दिष्ट केवल दो वर्ष तक के कारावास और कुछ कम गंभीर अपराधों तक के दंडनीय अपराधों को सरसरी तौर पर सुनवाई योग्य बनाया गया है। खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम के तहत अपराध, हालांकि उच्च सजा के साथ दंडनीय हैं, अधिनियम में धारा 16-ए को लागू करके सारांश

प्रक्रिया के अनुसार स्पष्ट रूप से दंडनीय बना दिया गया है। अधिनियम की धारा 16-ए में कहा गया है कि अधिनियम की धारा 16 (1) के तहत सभी अपराधों पर सारांश तरीके से मुकदमा चलाया जाएगा। उक्त धारा के दूसरे परंतुक में आगे कहा गया है कि यदि संक्षिप्त सुनवाई शुरू होने पर या संक्षिप्त सुनवाई के दौरान, मजिस्ट्रेट को ऐसा प्रतीत होता है कि मामले की प्रकृति ऐसी है कि एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए कारावास की सजा पारित करनी पड़ सकती है या यह है, किसी अन्य कारण से, सरसरी तौर पर मामले की सुनवाई करने के लिए अवांछनीय, मजिस्ट्रेट पक्षों को सुनने के बाद, उस आशय का आदेश रिकॉर्ड करेगा और उसके बाद किसी भी गवाह को वापस बुलाएगा जिसकी जांच की गई हो और उक्त संहिता द्वारा प्रदान किए गए तरीके से मामले की सुनवाई या पुन: सुनवाई के लिए आगे बढ़ेगा। उपर्युक्त परंतुक से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि मुकदमे के दौरान मजिस्ट्रेट के लिए यह खुला है कि वह उक्त प्रावधान के संदर्भ में सारांश प्रक्रिया से वारंट प्रक्रिया में बदल जाए। यह अच्छी तरह से तय है कि किसी एक प्रक्रिया में किसी को भी निहित अधिकार नहीं है। यह भी अच्छी तरह से तय है कि संहिता की धारा 216 के तहत न्यायालय में निहित किसी भी स्तर पर आरोप को बदलने की शक्ति बहुत व्यापक है। यह नियम कि एक बार मामला तय हो जाने के बाद, या तो बरी हो जाना चाहिए या दोषसिद्धि अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अपवादों के अधीन है। एक प्रक्रियात्मक गलती का सुधार हमारे विचार में ऐसा ही एक अपवाद है।

(अनुच्छेद 6)

पवन कुमार बनाम हरियाणा राज्य और अन्य 1989 (II) एफ.ए.सी. 36 अच्छे कानून को निर्धारित नहीं करता है।

सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका में प्रार्थना की गई है कि याचिका को स्वीकार किया जाए, याचिकाकर्ता के खिलाफ दायर शिकायत और 26 सितंबर, 1988 की शिकायत पर उसके खिलाफ आरोप तय किए गए और उसके खिलाफ लंबित कार्यवाही को रद्द किया जाए:

दिनांक 18 मई, 1984 की शिकायत में खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम की धारा 7/16 (1) (सी) के तहत और 26 सितंबर, 1988 को याचिकाकर्ता के खिलाफ खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम

की धारा 16 (1) (सी) के साथ धारा 7 के तहत आरोप तय किए गए थे।

न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, करनाल की अदालत में।

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता एचएन मेहतानी।

उत्तरदाताओं के लिए अरविंद सिंह, ए.ए.जी.।

<u>निर्णय</u>

न्यायमूर्ति ए. पी. चौधरी-

1. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 (इसके बाद 'संहिता' के रूप में संदर्भित) के तहत वर्तमान याचिका शुरू में जे एस सेखों, जे के समक्ष सुनवाई के लिए आई थी। याचिकाकर्ता के वकील द्वारा यह तर्क दिया गया था कि एक बार जब ट्रायल कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि ट्रायल के लिए अपनाई गई प्रक्रिया, चाहे वारंट केस के रूप में हो या सारांश आसानी के रूप में, अनुचित पाई गई, तो आरोपी को बरी करने और एक प्रक्रिया को दूसरे के खिलाफ चुनने में गलती को सुधारने का एकमात्र रास्ता खुला था और आगे की सुनवाई अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगी। उपरोक्त प्रस्ताव के समर्थन में विद्वान वकील द्वारा पवन कुमार बनाम हरियाणा राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों पर भरोसा किया गया था[1]। जे.एस. सेखों, न्यायमूर्ति का विचार था कि प्रक्रिया के किसी भी दोष को ठीक करने के लिए ट्रायल कोर्ट हमेशा खुला था और इस तरह के पाठ्यक्रम वास्तव में बरी करने के आदेश को सही नहीं ठहराते थे। विद्वान न्यायाधीश ने पवन कुमार के मामले (सुप्रा) में आदेश के साथ अपनी असहमति व्यक्त की और मामले को आधिकारिक निर्णय के लिए एक बड़ी पीठ को भेज दिया। इस तरह इस मामले को हमारे सामने रखा गया है।

2. प्रश्न की सराहना करने के लिए, तथ्यात्मक पृष्ठभूमि देना आवश्यक है। खाद्य निरीक्षक असंध

[1] 1989 (II) एफ.ए.सी. 36.

ने याचिकाकर्ता के खिलाफ 18 मई, 1984 को खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 की धारा 16 (1) (सी) के तहत शिकायत दर्ज की। यह कहा गया था कि याचिकाकर्ता ने खाद्य निरीक्षक को 5 मई, 1984 को हल्दी पाउडर का नमूना लेने से रोका था। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने संहिता की धारा 244 से 248 में शिकायत पर स्थापित वारंट मामले के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार मामले की सुनवाई शुरू की। प्री-चार्ज साक्ष्य दर्ज करने के बाद, 7 अक्टूबर, 1985 को याचिकाकर्ता के खिलाफ अधिनियम की धारा 16 (1) (सी) के तहत एक आरोप अनुबंध पी -2 तय किया गया था। इस स्तर पर बुध राम और दूसरे बनाम हरियाणा राज्य मामले में इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय का उल्लेख करना सुविधाजनक होगा[2]। पूर्ण पीठ के समक्ष प्रश्न संख्या 4 निम्नलिखित शब्दों में था:-

"4. क्या अधिनियम की धारा 16-ए के प्रावधान जो अधिनियम की धारा 16 (1) के तहत अपराधों की सुनवाई की परिकल्पना करते हैं, पहली बार संक्षेप में संक्षेप में अनिवार्य हैं?

यह अभिनिर्धारित किया गया था कि, "विधायिका का इरादा था कि अधिनियम की धारा 16 (1) के तहत सभी अपराधों को विशेष रूप से अधिकृत मजिस्ट्रेट द्वारा सरसरी तौर पर मुकदमा चलाया जाए, जब तक कि ऐसा मजिस्ट्रेट लिखित रूप में यह नहीं मानता कि अभियुक्त सजा की अधिक खुराक का हकदार है और इसलिए उस पर आपराधिक प्रक्रिया संहिता द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार मुकदमा चलाया जाए। ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त पूर्ण पीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, श्री भारत भूषण परसून, जिन्होंने इस बीच करनाल के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में कार्यभार संभाला था, ने दिनांक 14 मार्च, 1988 के अनुलग्नक पी-3 को पारित करने की कार्यवाही की। झूठ ने कहा कि आरोपी का मुकदमा उपरोक्त राय को दर्ज किए बिना वारंट मामले के रूप में आगे बढ़ा था और इसलिए, अपेक्षित राय दर्ज करके और पूर्व-आरोप साक्ष्य के लिए मामले को तय करके दोष को ठीक करने के लिए कथित तौर पर कहा गया था। आरोप-पूर्व साक्ष्य दर्ज करने के बाद, उन्होंने 26 सितंबर, 1988 को एक आरोप (अनुलग्नक पी-4) तैयार किया। अभियुक्त ने व्यथित महसूस किया और वर्तमान याचिका के माध्यम से अपने खिलाफ पूरी कार्यवाही और विशेष रूप से आदेश अनुलग्नक पी -3 और

[2] 1984 (II)) एफ.ए.सी. 179.

पी -4 को रद्द करने के लिए इस अदालत का रुख किया।

3. पवन कुमार के मामले (सुप्रा) में अवलोकन के सही आयात की सराहना करने के लिए, उस मामले के तथ्यों को देना आवश्यक है। खाद्य निरीक्षक ने 13 अगस्त, 1984 को पी के खिलाफ अधिनियम की धारा 16 (1) (ए) (आई) के तहत शिकायत दर्ज की। वारंट मामले की प्रक्रिया के अनुसार सुनवाई शुरू हुई। मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, ट्रायल मजिस्ट्रेट ने आदेश दिया कि मामले की सुनवाई संक्षिप्त प्रक्रिया के अनुसार की जाएगी। 2 अगस्त, 1988 को पी ने संहिता की धारा 482 के तहत एक याचिका दायर की, जिसमें कहा गया था कि "इसके लिए एकमात्र रास्ता बरी करने का आदेश देना था और सारांश मामलों के परीक्षण के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार फिर से सुनवाई नहीं करना था । उपर्युक्त विवाद विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष प्रबल था और जिन भौतिक टिप्पणियों पर भरोसा किया गया है, वे निम्नानुसार हैं:-

पीठ ने कहा, "इस प्रस्ताव को अब इस अदालत में याचिकाकर्ता के वकील एच एन मेहतानी ने पेश किया है। याचिकाकर्ता पर राम चंदर बनाम हरियाणा राज्य 82 (II) खाद्य अपमिश्रण की रोकथाम पिंजरे 331: चटर भुज बनाम हरियाणा राज्य, 1985 (II) खाद्य अपमिश्रण निवारण मामले 205, राम किशन बनाम हरियाणा राज्य, 1986 (II) खाद्य अपमिश्रण निवारण मामले 150 और नंद लाल बनाम हरियाणा राज्य, 1987 (II) खाद्य अपमिश्रण निवारण मामले 95 जिसमें यह बार-बार कहा गया था कि ऐसी परिस्थितियों में विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित किया जाने वाला उचित आदेश अभियुक्त को बरी करने का होगा, न कि 2 अगस्त के अपने आक्षेपित आदेश में विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा निर्धारित सारांश प्रक्रिया के अनुसार पुन: विचारण का। 1988."

4. परिणाम यह था (i) 2 अगस्त, 1988 के आदेश को रद्द कर दिया गया था (ii) पी को उसके खिलाफ लगाए गए आरोप से बरी कर दिया गया था।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने उपरोक्त टिप्पणियों पर दृढ़ता से भरोसा करते हुए आगे कहा कि पवन कुमार के मामले (सुप्रा) में उद्धृत विभिन्न निर्णयों में इसी तरह का दृष्टिकोण लिया गया था और इस प्रकार दृष्टिकोण के पक्ष में मिसाल का वजन था। उन्होंने कहा कि वारंट

मामले के रूप में मुकदमा शुरू करने के पिछले आदेश की समीक्षा करना मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। यह भी दलील दी गई कि एक बार आरोप तय हो जाने के बाद निचली अदालत के पास एकमात्र रास्ता यही बचता है कि वह आरोपी को दोषी ठहराएं या बरी कर दें और नए सिरे से सुनवाई का आदेश न दें। यहां तक कि ऐसी परिस्थितियों में आरोपमुक्त होना भी बरी होने के बराबर है।

6. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान वकील का तर्क यह है कि मामले के अंतिम निपटान से पहले किसी भी समय प्रक्रिया की किसी भी त्रुटि को ठीक करने के लिए मजिस्ट्रेट हमेशा खुला है और इसे कानून के प्रस्ताव के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि ऐसा करने से पूरी कार्यवाही खराब हो जाएगी।

7. हमने उपर्युक्त तर्कों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है।

8. यह स्वयंसिद्ध है कि वारंट मामले की सुनवाई की प्रक्रिया की तुलना में सारांश प्रक्रिया अभियुक्त के लिए कम अनुकूल है। यही कारण है कि संहिता की धारा 260 के विभिन्न खंडों में विनिदष्ट केवल दो वर्ष तक के कारावास और कतिपय कम गंभीर अपराधों तक के दंडनीय अपराधों को सरसरी तौर पर सुनवाई योग्य बनाया गया है। खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम के तहत अपराध, हालांकि उच्च सजा के साथ दंडनीय हैं, अधिनियम में धारा 16-ए को लागू करके सारांश प्रक्रिया के अनुसार स्पष्ट रूप से दंडनीय बना दिया गया है। अधिनियम की धारा 16-ए में कहा गया है कि अधिनियम की धारा 16 (1) के तहत सभी अपराधों पर सारांश तरीके से मुकदमा चलाया जाएगा। उक्त धारा के दूसरे परंतुक में आगे कहा गया है कि यदि संक्षिप्त सुनवाई शुरू होने पर या संक्षिप्त सुनवाई के दौरान, मजिस्ट्रेट को ऐसा प्रतीत होता है कि मामले की प्रकृति ऐसी है कि एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए कारावास की सजा पारित करनी पड़ सकती है या यह है, किसी अन्य कारण से, सरसरी तौर पर मामले की सुनवाई करने के लिए अवांछनीय, मजिस्ट्रेट पक्षों को सुनने के बाद, उस आशय का आदेश रिकॉर्ड करेगा और उसके बाद किसी भी गवाह को वापस बुलाएगा जिसकी जांच की गई हो और उक्त संहिता द्वारा प्रदान किए गए तरीके से मामले की सुनवाई या पुन: सुनवाई के लिए आगे

बढ़ेगा। उपर्युक्त परंतुक से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि मुकदमे के दौरान मजिस्ट्रेट के लिए यह खुला है कि वह उक्त प्रावधान के संदर्भ में सारांश प्रक्रिया से वारंट प्रक्रिया में बदल जाए। यह अच्छी तरह से तय है कि किसी एक प्रक्रिया में किसी को भी निहित अधिकार नहीं है। यह भी अच्छी तरह से तय है कि संहिता की धारा 216 के तहत अदालत में निहित किसी भी स्तर पर आरोप को बदलने की शक्ति बहुत व्यापक है। यह नियम कि एक बार आरोप तय होने के बाद मामला या तो बरी हो जाना चाहिए या दोषसिद्धि अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अपवादों के अधीन है। एक प्रक्रियात्मक गलती का सुधार हमारे विचार में ऐसा ही एक अपवाद है।

9. किसी भी मामले में, पवन कुमार के मामले (सुप्रा) में निर्धारित प्रस्ताव, जहां तक यह निर्धारित करता है कि इस तरह के आदेश से पूरे मुकदमे को नुकसान पहुंचता है, जिसके परिणामस्वरूप बरी हो जाता है, कानून के सही बयान के रूप में स्वीकार करने के लिए बहुत व्यापक है। ऐसे मामले हो सकते हैं, जो अपने स्वयं के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर हों, जिनमें उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए कार्यवाही को रद्द कर सकता है, यह निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि आदेश पारित होने पर एक प्रक्रिया को दूसरे के लिए बदलने से कार्यवाही प्रभावित होगी। हम आगे यह भी बता सकते हैं कि भले ही लागू किए गए एक निश्चित आदेश को रद्द कर दिया जाए, लेकिन बरी होना स्वाभाविक परिणाम के रूप में नहीं होता है। आम तौर पर यह होता है कि जिस चरण में आदेश पारित किया गया था, उस चरण से एक परीक्षण या उस दोष के बिना एक नया परीक्षण होता है जिसे लागू किया गया था। किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर विचार करने के बाद ही उच्च न्यायालय को पूरी कार्यवाही को रद्द करने और बरी करने का आदेश देने के लिए राजी किया जा सकता है। यह उस आदेश को रद्द करने के परिणाम के रूप में नहीं होता है जिसके द्वारा अभियुक्त व्यथित महसूस कर सकता है।

10. पवन कुमार के मामले (सुप्रा) में उल्लिखित विभिन्न निर्णयों के संबंध में, विद्वान न्यायाधीश ने संदर्भ ति आदेश पर ध्यान दिया कि वे अलग-अलग थे। हमें शायद ही कुछ और जोड़ने की जरूरत है। दूसरे शब्दों में, हमें पवन कुमार के मामले (सुप्रा) से निकाली गई टिप्पणी में निहित

प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए कोई मिसाल नहीं मिलती है।

11. इसलिए, हम मानते हैं कि पवन कुमार के मामले (सुप्रा) में विचाराधीन टिप्पणियों में कानून का सही बयान नहीं है। उक्त टिप्पणियों को पवन कुमार के मामले (सुप्रा) के तथ्यों और परिस्थितियों में किया गया माना जाना चाहिए और इसे सामान्य आवेदन के नियम को निर्धारित करने के लिए नहीं लिया जा सकता है। यह मामला अब गुण-दोष के आधार पर निर्णय के लिए एकल न्यायाधीश के पास वापस जाएगा। इस निर्णय की एक प्रति पंजाब, हरियाणा और चंडीगढ़ राज्यों के सभी जिला और सत्र न्यायाधीशों को भेजी जाए ताकि उनके अधीन काम करने वाले सभी न्यायिक अधिकारियों को उनकी जानकारी मिल सके।

आर.एन.आर.

अस्वीकरण: स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

प्रियांक गोयल

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

यमुनानगर, हरियाणा